

पातञ्जलयोगदर्शन में ईश्वरस्वरूप : एक विवेचन

शिवम मणि त्रिपाठी

शोधार्थी, केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

The Nature of Īśvara in the Pātañjala Yoga Darśana: A Critical Study

Shivam Mani Tripathi

Scholar, Central Sanskrit University, New Delhi

¹Received: 04/03/2025; Accepted: 25/04/2025; Published: 06/05/2025

Abstract

The present paper, "The Nature of Īśvara in Patañjali's Yoga Philosophy: A Critical Study," offers a comprehensive analysis of the distinctive concept of Īśvara (God) as expounded in the *Yoga Sūtras* of Maharshi Patañjali. It examines the characteristics of Īśvara and His role in the attainment of liberation (*mokṣa*). Yoga philosophy is not confined merely to physical practices or ritualistic actions; rather, it is a profound system aimed at the cessation of the modifications of the mind (*citta-vṛtti-nirodha*) and the realization of *kaivalya* (absolute liberation). Unlike Sāṅkhya philosophy, which recognizes twenty-five principles (*tattvas*), the Yoga system accepts Īśvara as the twenty-sixth principle.

The paper demonstrates that, in Patañjali's Yoga, Īśvara is not conceived as the creator of the universe but as the supreme object of meditation for yogins, the omniscient and eternal teacher (*ādi-guru*), and the bestower of the fruits of *samādhi*. Maharshi Patañjali defines Īśvara as "kleśa-karma-vipākāśayair aparāṁṛṣṭaḥ puruṣa-viśeṣa īśvaraḥ"—a special *Puruṣa* who is forever untouched by the five afflictions (*kleśas*), actions (*karma*), their results (*vipāka*), and latent impressions (*āśaya*). In contrast to Advaita Vedānta, where the liberated individual self ultimately merges with Brahman, Patañjali's Yoga maintains that even after attaining *samādhi* through *Īśvara-praṇidhāna* (complete devotion to Īśvara), the individual self remains distinct from Īśvara while achieving *kaivalya*, since Īśvara is eternally free.

The study further highlights the significance of the chanting of *Pranava* (Om), the practice of Aṣṭāṅga Yoga, and Kriyā Yoga as effective means of cultivating devotion to Īśvara and attaining mastery over the mind. Furthermore, it compares the concept of Īśvara in Yoga with that found in the Vedic literature, the Upaniṣads, the *Bhagavad Gītā*, and other Indian philosophical traditions such as Sāṅkhya, Vedānta, and Nyāya. The paper ultimately emphasizes the practical, philosophical, and universal relevance of Patañjali's conception of Īśvara in promoting individual spiritual development and broader social well-being.

Keywords: Patañjali Yoga; Īśvara; Puruṣa-viśeṣa; Īśvara-praṇidhāna; Yoga Sūtras; Samādhi; Kaivalya.

¹ How to cite the article: Tripathi S.M.; The Nature of Īśvara in the Pātañjala Yoga Darśana: A Critical Study; International Journal of Advancement of Social Science and Humanity; Jan-Jun 2025, Vol 19, 125-133

सार

प्रस्तुत आलेख 'पातञ्जलयोगदर्शन में ईश्वरस्वरूप : एक विवेचन' में महर्षि पतञ्जलि के योगसूत्रों के आधार पर ईश्वर के विशिष्ट स्वरूप, उसके लक्षणों तथा मोक्ष साधना में उसकी भूमिका का सांगोपांग विवेचन किया गया है। योगशास्त्र केवल कर्म या शारीरिक क्रियाओं तक सीमित न होकर चित्तवृत्ति-निरोध एवं कैवल्य प्राप्ति का सशक्त साधन है। सांख्य के २५ तत्त्वों के विपरीत, योग दर्शन ईश्वर को २६वें तत्त्व के रूप में स्वीकार करता है।

इस शोध-पत्र में स्पष्ट किया गया है कि पातञ्जल योग में ईश्वर संसार का रचयिता या सृष्टि-कर्ता न होकर योगियों का उपासक, सर्वज्ञ, अनादि गुरु और समाधि का फल प्रदान करने वाला 'पुरुषविशेष' है। महर्षि पतञ्जलि ईश्वर को "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः" कहकर परिभाषित करते हैं—अर्थात् जो अविद्या आदि पाँच क्लेशों, शुभाशुभ कर्मों, कर्मफल (विपाक) और वासना (आशय) से सर्वदा अपरामृष्ट (अछूता) रहता है। अद्वैत वेदांत से इतर, जहाँ जीव मुक्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है, योग दर्शन में समाधि एवं ईश्वर-प्रणिधान (अनन्य भक्ति) प्राप्त करने के पश्चात् भी साधक ईश्वर से भिन्न रहकर कैवल्य प्राप्त करता है, क्योंकि ईश्वर सदैव मुक्त है। आलेख में प्रणव (ॐ) जप, अष्टांग योग तथा क्रियायोग के माध्यम से ईश्वर भक्ति और चित्त-संयम की प्रक्रिया को रेखांकित किया गया है। साथ ही, वैदिक वाङ्मय, उपनिषदों, भगवद्गीता एवं अन्य भारतीय दर्शनों (सांख्य, वेदांत, न्याय आदि) के साथ ईश्वर सम्बंधी विचारों की तुलना करते हुए योग की व्यावहारिक एवं वैश्विक-सामाजिक उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तावना

प्रारम्भ से ही योग भारत और सम्पूर्ण विश्व के स्वास्थ्य और आध्यात्मिकता के लिए निरंतर प्रयासरत रहा है। संसार के अभ्यास और मन की साधना में योग की बड़ी उपयोगिता है। किन्तु योगशास्त्र केवल कर्मयोग का ही द्योतक नहीं है, अपितु मोक्ष का साधन भी बताता है। योगदर्शन में कहा गया है कि "तत्त्वदर्शनोपोयो योगः"। उपनिषदों में भी कहा गया है सांख्य योग से भिन्न उस कारण को जानकर मनुष्य ईश्वर के समस्त बंधनों से मुक्त हो जाता है। सभी शास्त्रों में वर्णित सिद्धान्त यही है कि योग जीव और परमात्मा की एकता है। योग मन का धर्म है, मन की सभी भूमियों या मन की अवस्थाओं में ज्ञात संयम का लक्षण है। श्रीमद्भगवद्गीता में परमात्मा श्रीकृष्ण ने कहा है "सिद्धसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते"²। महाभारत में मोक्ष धर्म कहता है "नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम्" इसलिए मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में योगशास्त्र का भी अध्ययन करना चाहिए। जो योग द्वारा वर्णित वाचिक, शारीरिक और मानसिक साधनों से पूजित होता है, वह ईश्वर हो जाता है। सत्य बोलना वाचिक साधन है, प्राणायाम और आसन शारीरिक साधन हैं, तथा ओंकार प्रणव का जप मानसिक साधन है। योगशास्त्रों में तीनों प्रकार के साधन सहज ही उपलब्ध हैं।

योगशास्त्र का प्रमुख प्रमेय तत्त्व ही ईश्वरतत्त्व है। भगवान की कृपा से योगी शीघ्र ही समाधि के फल प्राप्त कर लेता है, जो अभ्यास और त्याग से अप्राप्य हैं। कठक उपनिषद् में कहा गया है "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः"³, इसीलिए योगदर्शन में वर्णित ईश्वर का स्वरूप, जो अन्य शास्त्रों से भिन्न है। इस विषय में वेदान्ती कभी सगुण ब्रह्म को ईश्वर कहते हैं, तो कभी परब्रह्म को भी ईश्वर शब्द से संदर्भित करते हैं। उदाहरण के लिए, "ईश्वरस्तु पर्जन्यवत् द्रष्टव्यः"⁴ इत्यादि। परन्तु योग में, ईश्वर संसार का रचयिता नहीं है, वह केवल योगियों का उपासक और समाधि प्रदान करने वाला

² श्रीमद्भगवद्गीता – 2-48

³ कठोपनिषद् – १-२-२३

⁴ ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम्, सूत्र -२-१-३४

है। महर्षि पतंजलि प्रकृति-पुरुष से भिन्न ईश्वर के स्वरूप का वर्णन "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषः ईश्वरः"⁵ इसी योगसूत्र में प्रतिपादन करते हैं।

महर्षि पतंजलि के सूत्रों में कहा गया है कि जो व्यक्ति अज्ञान, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, कर्म और वासना आदि पाँच प्रकार के दुःखों से सर्वदा सर्वथा पृथक् पुरुष है, अर्थात् संपर्करहित पृथक् पुरुष है। जब बद्ध पुरुष विवेक की महिमा प्राप्त कर लेता है, तो वह मुक्त हो जाता है। परन्तु वह ईश्वर नहीं है। ईश्वर न कभी बद्ध था, न कभी बद्ध होगा। इसलिए योगसूत्र के भाष्य में कहा गया है कि ईश्वर सदैव मुक्त है।

ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति से आच्छादित साधक के संकल्प से ही समाधि प्राप्त करता है और उसके फल प्राप्त करता है। तथापि, यदि मोक्ष चाहने वाला साधक स्वयं के साधनों से और भगवान की कृपा से समाधि प्राप्त भी कर लेता है, तो भी वह ईश्वर से एकरूप नहीं हो पाता। अद्वैत दर्शन के अनुसार, मोक्ष चाहने वाला साधक, गुरु द्वारा बताए गए श्रवण आदि साधनों का अभ्यास करके, स्वयं को जीव और परमात्मा के साथ एक मान लेता है, और शाश्वत ज्ञान के बंधन से मुक्त होकर परम कैवल्य को प्राप्त कर लेता है, अर्थात् ब्रह्म हो जाता है। अतः, योग दर्शन अद्वैत दर्शन से भिन्न है। साधना की अवस्था में, योग शास्त्रों में वर्णित अष्टांग योग और क्रिया योग साधक के लिए अत्यंत सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रणव का जाप और उसके अर्थ का ध्यान करने से ईश्वर के प्रति भक्ति उत्पन्न होती है। उस शुद्ध भक्ति से आच्छादित ईश्वर, योगी को शीघ्र ही चित्त-संयम से युक्त योग प्रदान करते हैं। अतः योग दर्शन में भक्ति योग को भी मुक्ति के साधन के रूप में वर्णित किया गया है। इस प्रकार योग मोक्ष प्राप्ति के प्रमुख साधनों में से एक है।

प्रमुख शब्द - योग, ईश्वर, श्रवण, क्लेश, कर्म, विपाक, आश्रय, वृत्ति, अहंकार, मोक्ष, प्रणिधान आदि।

उपक्रम – विश्वगुरु भारत है और सनातन इसकी संस्कृति है। संस्कृत में लिखे गए शास्त्रों ने भारत और इसकी सनातन संस्कृति के संरक्षण में महान योगदान दिया है। मोक्ष प्रतिपादन करने वाले छह आस्तिकों दर्शनों में से योग दर्शन सबसे महत्वपूर्ण है। सांख्य दर्शन में पच्चीस तत्व या पदार्थ हैं, लेकिन योग दर्शन में ईश्वर को एक विशेष व्यक्ति के रूप में स्वीकार करके योग दार्शनिकों द्वारा छब्बीस तत्वों स्वीकारते हैं। सांख्य कहते हैं कि तत्व अहंकार से उत्पन्न होते हैं, लेकिन योग के दार्शनिक कहते हैं कि बुद्धि तत्व से पञ्च तन्मात्रा आदि के उत्पन्न होते हैं। सांख्य दर्शन में श्रवण, चिंतन और ध्यान पर अधिक बल दिया जाता है, लेकिन योग दर्शन में केवल अष्टांग योग और अन्य साधनों पर विशेष ध्यान देने का निर्देश दिया गया है। योग दर्शन का महान प्रभाव अन्य दर्शनों में भी देखा जाता है। उदाहरण के लिए, वेदांत दर्शन में अष्टांग योग का ग्रहण किया जाता है। अतः यह दर्शन बहुत पुराना और गंभीर है। उपनिषदों में भी योग के महत्व पर बल दिया गया है। काठकोपनिषद् में कहा गया है: "तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम्"⁶। महाभारत में, मोक्ष धर्म में योग का महत्व इस प्रकार बताया गया है: "नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम्"⁷। योग उन मोक्ष चाहने वालों के लिए सबसे प्रभावी साधन है जो साधन के मार्ग में प्रवेश कर चुके हैं। योगदर्शन के प्रतिपादन विषयों में से अत्यन्त महत्वपूर्ण विचारणीय विषय है ईश्वरस्वरूप। इसलिए, वर्तमान में, योग के शास्त्रों में सैद्धांतिक रूप से ईश्वर के स्वरूप का संक्षेप में वर्णन किया गया है। अतः योगदर्शन में प्रमेय भूत ईश्वर स्वरूप का विवेचन पातञ्जलयोग दर्शन के अनुसार विचार करते हैं।

योग शब्द के व्युत्पत्ति - योग शब्द का अर्थ समाधि है। योग शब्द द्विज गण युज् धातु घञ् प्रत्यय से बना है, जिसका अर्थ जीव और परमात्मा की एकता। योग मन का सार्वभौमिक धर्म है, अर्थात् मन की सभी अवस्थाओं में विद्यमान

⁵ योगसूत्रम् – १-२४

⁶ कठ उपनिषद् – १-३-११

⁷ महाभारत- शान्तिपर्व – १२-३०४-२

निरोध की विशेषता। योग दर्शन के समाधिपाद के प्रथम सूत्र के भाष्य में व्यास कहते हैं: "योगः समाधि"⁸ है। समाधि के लिए, व्यक्ति को मन की सभी क्रियाओं पर संयम करना चाहिए। मन की पाँच वृत्तियाँ प्रमाण, व्यतिरेक, विकल्प, निद्रा और स्मृति हैं। जब ये सभी वृत्तियाँ अंततः सामंजस्य में होती हैं, तो समता से युक्त योग प्राप्त होता है। इस प्रकार, भगवान गीता में कहते हैं: "समत्वं योग उच्यते"⁹। योग सुख और दुःख की समता है। योग शेष सांसारिक कष्टों की अंतिम लय है। इस प्रकार गीता में भगवान कहते हैं: "तं विद्यादुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्"¹⁰

योग का साधन: योग पवनरहित दीपक के समान मन की स्थिर अवस्था की प्राप्ति या मन की वृत्तियों का निरोध है। इस हेतु वर्णित शास्त्रीय उपाय है "अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः"¹¹। अभ्यास मन को स्थिर रखने और उसे शांतिपूर्वक धारण करने का प्रयास है। योग सूत्र में भी कहा गया है, "तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः"¹² भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, "अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते"। ईश्वर का ध्यान भी चित्त वृत्तियों के निरोध का एक विशिष्ट साधन है। प्रमाण के रूप में, एक अन्य पतंजलि सूत्र का उल्लेख करना समीचीन होगा, अर्थात्, "समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्"¹³। योग में वर्णित साधनों के अभ्यास से जब योगी दूसरों से वैराग्य विकसित कर लेता है तो उसे श्रद्धा, बल और अन्य सिद्धियाँ प्राप्त होने से पहले असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है। वह समाधि भी ईश्वर के ध्यान से ही प्राप्त होती है। अतः ईश्वर का प्रणिधान भी समाधि का एक साधन है। जब ईश्वर की परम भक्ति की जाती है, तो ईश्वर प्रसन्न होते हैं और साधक को अचेतन ध्यान का फल प्रदान करते हैं। ईश्वर का ध्यान करते हुए, मन ईश्वर की ओर उन्मुख होता है। तभी ईश्वर की कृपा से बाधाएँ दूर होती हैं और समाधि प्राप्त होती है। इस प्रकार यदि ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति हो, तो उपासक के मन में ईश्वर के स्वरूप के बारे में जिज्ञासा और अधिक स्पष्ट हो जाती है कि यह ईश्वर कौन है। इस प्रकार, महान ऋषि पतंजलि प्रकृति-पुरुष से भिन्न, योगिक ईश्वर के स्वरूप का वर्णन "क्लेशकर्मविपाकाशयैः अपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः"¹⁴ के रूप में करते हैं, जो दुःख और कर्म के परिणामों की इच्छाओं से अछूता रहता है।

क्लेशकर्मविपाकादयैः वासनाभिस्तथैव च।

अपरामृष्टमेवाह पुरुषं हीश्वरं श्रुतिः॥

वैदिक वाङ्मय में ईश्वर का चिंतन - ऋग्वेद के भाष्य में उपासना संबंधी अध्याय में ईश्वर के स्वरूप के संबंध में कहा गया है कि जिसका कोई समान नहीं है, जो सदैव आनंदस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और सर्वशक्तिमान है वही ईश्वर है। स्वामी दयानंद ने स्पष्ट किया है कि "ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्"¹⁵ मंत्र में अक्षर शब्द का प्रयोग ईश्वर के लिए किया गया है। यास्क ने यह भी कहा कि महर्षि शाकपूणि के अनुसार अक्षर शब्द का अर्थ ॐ है। इंद्र शब्द का प्रयोग भी ईश्वर के अर्थ में व्यापक रूप से किया गया है। ऋग्वेद भाष्य में (1-164-46), स्वामी दयानंद ने इंद्र शब्द का अर्थ सर्वोच्च आत्मा बताया है। इस प्रकार 'इदि परमैश्वर्ये' धातु से व्युत्पन्न इंद्र शब्द का अर्थ सर्वोच्च आत्मा है। ऋग्वेद पर अपने भाष्य में आचार्य सायण ने भी परमात्मा के अर्थ में इंद्र शब्द का प्रयोग किया है। ऐतरेय उपनिषद, श्रीमद्-भागवतम् पर भाष्य में, श्रीमद्-भागवतम् के आचार्यों ने कहा है कि इंद्र शब्द सर्वोच्च अर्थ को दर्शाता है। 23 उपनिषदों में ईश्वर के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है। ओम्, अविनाशी, नित्यः, अनादि, अनंत, अदृश्य, अजः, अत्यंत सूक्ष्म, आनंदमय, अमृत,

⁸ व्यास भाष्य – १-१-१

⁹ श्रीमद् भगवद्गीता – २-४८

¹⁰ श्रीमद् भगवद्गीता – ६-२३

¹¹ योगसूत्रम् – १-१२

¹² योगसूत्रम् – १-१३

¹³ योगसूत्रम् – २-४५

¹⁴ योगसूत्रम् – १-२४

¹⁵ ऋग्वेद – १-१६४-३९

एक, जगत्कर्ता, निराकार, चेतन, निर्गुण तथा अग्नि आदि शब्दों से ईश्वर का वर्णन होता है। इस प्रकार कठोपनिषद् में ईश्वर के लिए ओम् शब्द का प्रयोग हुआ है। मुण्डक उपनिषद् में “यत्तद्वेश्यम्”¹⁶ मंत्र में, ईश्वर को अदृश्यता आदि गुणों से वर्णित किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् में ओम् शब्द द्वारा वर्णित ईश्वर को आनंदमय कहा गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में भी ईश्वर को अविनाशी, पूर्ण और अमृत बताया गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन है। यहाँ भी ईश्वर को जन्म और उत्पत्ति से रहित, एकत्व, बंधन से रहित, परम महत्त्व, शाश्वत, ब्रह्मांड का रचयिता, जगत में निवास करने वाला, अकारण और निर्गुण बताया गया है। वहाँ अग्नि आदि शब्दों द्वारा इसका वर्णन किया गया है। यह विचार करना आवश्यक है कि उपनिषदों में वर्णित उसी ईश्वर का क्या लक्षण है और योगशास्त्रों में क्या निर्देश है।

ईश्वर के लक्षण: किसी भी वस्तु का बोध लक्षणों और प्रमाणों के बिना उत्पन्न नहीं होता। पतंजलि के सूत्रों के अनुसार, वह विशिष्ट व्यक्ति जो पाँच प्रकार के दुःखों, पाप-पुण्य रूपी कर्मों, सुख-दुःख रूपी कर्मों, कर्मकांडों और कामनाओं से सर्वदा पूर्णतः अछूता रहता है, अर्थात् संपर्करहित विशिष्ट व्यक्ति ईश्वर कहलाता है। जब कोई बद्ध व्यक्ति विवेक की ख्याति प्राप्त कर लेता है, तो वह मुक्त हो जाता है। परन्तु वह ईश्वर नहीं है। ईश्वर न कभी बद्ध था और न कभी बद्ध होगा। इसलिए योग सूत्र के भाष्य में कहा गया है कि ईश्वर सदैव मुक्त है। उपनिषदों में भी कहा गया है, “अथ परित्राड्विवर्णवासाः मुण्डोऽपरिग्रहः”¹⁷। योगभाष्य पर रचित विज्ञानभिक्षु की योगवार्तिक में कहा गया है:

कामतोऽकामतो वापि यत्करोमि शुभाशुभम्।

तत्सर्वं त्वयि सन्न्यस्तं त्वप्रयुक्तः करोम्यहम्॥ इति

क्लेशकर्मविपाकाशयैः अपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः - यहाँ दिए गए लक्षण में ईश्वर लक्ष्य है और इसके भिन्न लक्षण हैं। लक्षणों द्वारा उल्लिखित विषयवस्तु को दो भागों में विभाजित किया गया है, दुःख, कर्म और परिणाम के प्रकाश से अछूता, और विशेष व्यक्ति। इसे एक विशेष व्यक्ति कहने से यह भ्रम होता है कि सांख्य में वर्णित विशेष व्यक्ति है ? जैसे किसी अज्ञात नाम वाले वृक्ष को वृक्ष की एक प्रजाति कहा जाता है, वैसे ही यह संदेह नहीं करना चाहिए कि यह वही है। यह ईश्वर सांख्य में वर्णित पुरुष से भिन्न है, जो चेतना के गुणों से कभी प्रभावित नहीं होता। इसीलिए कहा गया है कि व्यक्ति दुःख, कर्म और परिणाम की इच्छाओं से अछूता है। इस प्रकार, यह ईश्वर इन चार प्रकार के बौद्धिक लक्षणों से सदैव अछूते रहते हैं: क्लेश, कर्म, विपाक, आशय इत्यादि।

“क्लिशन्तीति क्लेशः”- अज्ञान आदि पाँच क्लेश हैं। ये अज्ञान, तादात्म्य, राग और द्वेष के आसक्तियाँ (अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश) भी हैं। धर्म और अधर्म के संस्कार वे संकल्प हैं जो निष्फलता के फल के कारण मन की भूमि पर स्थित होते हैं। ये मन में निरंतर विद्यमान रहते हैं और बुद्धि के ध्यान द्वारा व्यक्ति में इनका उपचार किया जाता है। इसी प्रकार, चेतना के गुण जैसे राग, द्वेष, लोभ और मोह, अदृष्ट आत्मा में स्थित हैं। जो इस सुख से अछूता रहता है भले ही उसके साथ यह एक विशिष्ट पुरुष ईश्वर है। जिन लोगों ने तीन प्रकार के बंधनों, अर्थात् तीन प्राकृतिक और परिवर्तनशील बंधनों को काटकर कैवल्य प्राप्त कर लिया है, और जो प्रकृति में लीन हैं, उनके पूर्व और उत्तरार्द्ध में बंध जाने की संभावना है। उदाहरण के लिए, पूर्व उन लोगों के लिए बंधन का मुकुट है जो मुक्त हैं, और उत्तरार्द्ध उन लोगों के लिए बंधन का मुकुट है जो प्रकृति में लीन हैं। ईश्वर के साथ ऐसा नहीं है। ईश्वर के साथ यह संबंध न तो भूतकाल का है और न ही भविष्यकाल का। इस प्रकार चौबीस जड़ तत्त्वों के उपासक प्रकृति से विरक्त और लीन होते हैं। इस प्रकार जो मूल प्रकृति प्रकृति के विकृत स्वरूपों, महत्त्व, अहंकार और सूक्ष्म पंच तत्त्वों की पूजा करते हैं, वे अचेतन समाधि में प्रकृति में लीन हो जाते हैं। ग्यारह इंद्रियों और पाँच स्थूल प्राणियों के उपासक, जो केवल विकृत हैं, अचेतन समाधि में विरक्त हो जाते हैं। ईश्वर सदैव मुक्त हैं और सदैव ईश्वर हैं। ईश्वर उत्कृष्ट सत्ता का स्रोत हैं। यही ईश्वर की

¹⁶ मुण्डकोपनिषद् – १-१-६

¹⁷ जाबालोपनिषद् -५

शाश्वत उत्कृष्टता भी है। उत्कृष्ट सत्ता ईश्वर में विद्यमान एक विशिष्ट शक्ति है। उत्कृष्ट सत्ता के रूप में ईश्वर की उपाधि ही शास्त्रों में प्रमाण है। शास्त्रों और भगवान के बीच का संबंध जो ईश्वर की उपाधि के रूप में शुद्ध सत्ता में विद्यमान है, शाश्वत है। यही कारण है कि भगवान इस कारण से सदैव मुक्त रहते हैं। स्वयं पर ईश्वर की कृपा न होने पर भी दूसरों पर कृपा ही उद्देश्य है। अत्यधिक धन केवल ईश्वर के लिए ही संभव है। वह ऐश्वर्य समता के अतिरेक से मुक्त है। ईश्वर के समान या उससे अधिक शक्तिशाली कहीं कोई नहीं है। न ही कोई अन्य धन उससे बढ़कर है। जो कुछ भी ऊपर है, वह ईश्वर का ऐश्वर्य है। इसलिए, जहाँ भी कोई ऐश्वर्य के शिखर को प्राप्त करता है वही ईश्वर है। ईश्वर के समान किसी अन्य के पास धन नहीं है। इस प्रकार ईश्वर और ईश्वर के बीच का भेद स्वीकार नहीं किया जाता।

प्रणव जप - ओंकार शब्द तीन अक्षरों वाले को दर्शाता है, जो तीन देवताओं का प्रतिनिधित्व करता है। ओंकार ईश्वर का प्रतीक है। सूत्र "तस्य वाचकः प्रणवः"¹⁸में, ओंकार को परमात्मा के प्रतीक के रूप में वर्णित किया गया है। ऐसा कहा जाता है कि ओंकार मंत्र का जाप और उसके अर्थ का ध्यान करने से योगी शीघ्र ही समाधि प्राप्त कर लेता है। अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण में ओंकार के जाप द्वारा बुद्धि को शुद्ध करने का विधान है। जब साधक ओंकार मंत्र का जाप करता है तो उसका मन शुद्ध हो जाता है। जब योगी का मन शुद्ध हो जाता है, तो उसमें सात्विक भावना विकसित होती है। जब सात्विक भाव उत्पन्न होता है तो मन शीघ्र ही एकाग्र हो जाता है। वहाँ यह भी कहा गया है कि ओंकार मंत्र के जाप से देवताओं ने दुष्ट राक्षसों से अपनी रक्षा की थी।

ईश्वर सर्वज्ञ और गुरु - ईश्वर सर्वज्ञ हैं, अर्थात् वे सभी प्रकार के ज्ञान से युक्त हैं। वेद में भी कहा गया है, "यः सर्वज्ञ सर्ववित्"¹⁹ सर्वज्ञ है। ईश्वर काल से विच्छिन्न नहीं है। ब्रह्मा आदि जो कल्प के आरंभ में उत्पन्न हुए थे काल द्वारा विच्छिन्न हो गए थे। ईश्वर उनके गुरु हैं। यद्यपि योग के अनुसार, ईश्वर सृष्टिकर्ता नहीं हैं, फिर भी योगशास्त्रों में उन्हें उपासक और समाधिदाता के रूप में वर्णित किया गया है। ईश्वर नित्य हैं और उत्तम सत्ता के कारण हैं। ईश्वर सदैव मुक्त हैं। उनका मुक्त जीवों से कोई संबंध भी नहीं है। ईश्वर एक हैं, त्रिकाल से आबद्ध हैं और शाश्वत हैं। ईश्वर ऐश्वर्य के शिखर हैं। अपने दयालु स्वभाव के कारण, ईश्वर सभी सृजित जीवों का उद्धार करते हैं। ईश्वर सर्वज्ञ हैं। उनकी सर्वज्ञता सृष्टि के आरंभ से लेकर अंत तक पूर्ण है। ईश्वर ब्रह्मा आदि के गुरु भी हैं। ईश्वर की संपत्ति ज्ञान की शक्ति से नहीं, बल्कि स्वाभाविक है। उनका ज्ञान और ऐश्वर्य नित्य हैं। ओंकार ईश्वर का द्योतक है। वाचिक और अभिव्यंजक तथा ईश्वर और ओंकार का संबंध भी नित्य है। इस प्रकार, विशिष्टता के अस्तित्व के कारण, शास्त्रों में कहा गया है कि योग में वर्णित भगवान मुक्त पुरुष से भिन्न हैं और एक विशिष्ट व्यक्ति हैं।

ईश्वर के बारे में मतभेद: योग के अनुसार, ईश्वर त्रिकाल से आबद्ध नहीं हैं। परंतु दार्शनिकों के ईश्वर संबंधी विचार भिन्न-भिन्न हैं। अतः बौद्ध सर्वज्ञ बुद्ध को ईश्वर मानते हैं। जैन धर्म के अनुसार सर्वज्ञ एवं योग्य ऋषि ही परमेश्वर हैं। नैयायिक, वैशेषिक और वैयाकरण कहते हैं कि ईश्वर जगत का कारण नहीं है, अपितु ईश्वर केवल जगत की उत्पत्ति का कारण है। उनके अनुसार ईश्वर कर्मफल दाता है। सांख्य जीवात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी ईश्वर को स्वीकार नहीं करते। मीमांसकों अनुसार कर्म ही फल देता है और उसके अतिरिक्त ईश्वर नाम का कोई अन्य नहीं है। अद्वैतवादियों के अनुसार परमात्मा अनिर्दिष्ट, कमल पुष्प के समान निर्मल, दिव्य एवं पारलौकिक है। परमार्थ में परमात्मा न तो जगत का कारण है और न ही उसके कारणों का। उनके अनुसार, जगत में कोई दिव्य सत्य नहीं है। जगत केवल एक व्यावहारिक सत्ता है। ब्रह्म जो माया का विषय है ऐसे जगत का कारण है। उनके अनुसार यही ईश्वर है। ईश्वर, जो माया का विषय है, अपनी ही प्रधानता में जगत का कारण है और अपनी ही प्रधानता में फल का कारण भी है। पतंजलि के अनुसार, ईश्वर जीव से भिन्न है। वह अनिर्दिष्ट और अस्पृश्य भी है, और ब्रह्मांड में उसका कोई कारण या कार्य नहीं है। शास्त्रों में कुछ

¹⁸ पातञ्जल योगसूत्र – १-२७

¹⁹ मुण्डकोपनिषद् – १-१-१

उक्तियाँ हैं, जैसे "स वा एष महाजनोऽन्नादो वसुदानः" (बृ. उ.), "एष सर्वेश्वरः सर्वज्ञः सर्वान्तर्यामी" (मा.उ.)। और स्मृति कहती है, "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति"। अतः कर्मफलदाता, जीवों के उपकारक और मध्यस्थ के रूप में ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिए।"

निष्कर्ष: पतंजलि योग में वर्णित ईश्वर का यहाँ विशेषताओं सहित वर्णन किया गया है। यद्यपि योग संसार सागर को पार करने की इच्छा रखने वाले योगियों की उच्च धाराओं का एक विशिष्ट मार्ग है, फिर भी योग की एक सांसारिक उपयोगिता है। व्यवहार में योग का पालन एक आत्मिक भावना द्वारा किया जाता है। योग का अभ्यास करने वाले और प्राणायाम में समर्पित लोगों का स्वास्थ्य सदैव सुरक्षित रहता है। जो लोग योग द्वारा बताई गई विधि से ईश्वर की आराधना करते हैं, उन्हें मन की शांति प्राप्त होती है।

योग की सामाजिक उपयोगिता - योग वह है जो मन या चेतना की शुद्धि के लिए आवश्यक है ठीक उसी प्रकार जैसे मानव स्थूल शरीर के अंगों में, जो अपने-अपने कार्यों के अनुसार प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध होते हैं, चंदन जैसे लेप से अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं। क्योंकि योग से मन का मैल दूर हो जाता है। शुद्ध मन सुख और शांति के लिए उपयुक्त होता है। योग का महान उद्देश्य मन को समाधि में लाना। मन की शुद्धि ही हमारे स्वाभाविक कल्याण का एकमात्र मार्ग है। शुद्ध मन में ही आध्यात्मिक भावनाएँ और इंद्रियों से परे की वस्तुएँ प्रकट होती हैं। अध्यात्म ही वास्तविक कल्याण का रहस्य है। महाभारत में कहा गया है कि मन की समाधि ही परम योग है।

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।

सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः उपाधिः।²⁰

समस्त आचरण मन पर निर्भर करता है। मन ही सबका मूल है। कहा गया है, "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"²¹ है। सभी शास्त्र मन की शांति के लिए उपयोगी हैं। और महाभारत में कहा गया है-

शमार्थ सर्वशास्त्राणि विहितानि मनीषिभिः।

स एव सर्वशास्त्रज्ञः यस्य शान्तं मनः सदा।। इति।।

स्मृति में भी यही कहा गया है, "अशांत के लिए सुख कहाँ है?" जिनका मन एकाग्र नहीं है, वे संसार के व्यवहार को सुधारने में सक्षम नहीं हैं। यदि हम इन सब पर एक उदाहरण के रूप में विचार करें तो यह समझ में आता है कि मन की साधना में योग का योगदान अपरिहार्य है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" भारतीय मान्यता है। वर्तमान में, योग के माध्यम से इसका प्रायोगिक रूप दिया गया है। आज अनेक देशों में पारस्परिक क्रिया अत्यंत लोकप्रिय है और यही योग की सफल क्रिया है। यही योग है जो विश्व के देशों को प्रेम के एक सूत्र में पिरोता है। उदाहरण के लिए, अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस अब केवल भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के हर कोने में मनाया जाता है।

निष्कर्ष: ईश्वरवाद दर्शनशास्त्र के प्रमुख सिद्धांतों में से एक है। अद्वैत और योग में ईश्वर के बारे में अधिक जानकारी मिलती है। वही सार तत्व जिसे अद्वैत शुद्ध और निर्विकार चेतना कहते हैं, योगियों द्वारा ईश्वर कहा जाता है। वेदान्त में कहीं-कहीं यह भी कहा गया है कि सगुण ब्रह्म ही ईश्वर है। परन्तु सिद्धान्त में कहा गया है कि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, अन्तर्यामी और साक्षी है। ईश्वर परम सत्य है और वह सभी जीवों की आत्मा है। अद्वैत वेदान्त में भी कहा है कि मोक्ष ईश्वर की कृपा से होता है। और गीता का श्लोक कहता है, "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"

²⁰ श्रीमद्भागवतपुराणम् – ११-२३-४५

²¹ अमृत बिन्दू उपनिषद् - २

²²अनन्य शरण मोक्ष का द्वार है। यहाँ भी योगशास्त्र कहते हैं कि साधक ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति से आच्छादित, अपने संकल्प से ही समाधि प्राप्त करता है और उसका फल प्राप्त करता है। परन्तु यदि साधक समाधि प्राप्त भी कर लेता है तो भी वह ईश्वर के साथ एकत्व प्राप्त नहीं कर पाता। हालाँकि अद्वैत दृष्टिकोण के अनुसार मोक्ष चाहने वाला साधक, गुरु द्वारा बताए गए श्रवण आदि साधनों का अभ्यास करके, जीव और परमात्मा की एकता का विचार करता है और शाश्वत ज्ञान के बंधन से मुक्त होकर परम कैवल्य को प्राप्त करता है, अर्थात् ब्रह्म हो जाता है। इसी प्रकार, शास्त्र कहता है, "ब्रह्मविदाप्नोति परम्"²³ ब्रह्म को जानने वाला परम को प्राप्त करता है। मुण्डक उपनिषद् भी कहता है कि परम को जानने वाला परम सत्य बन जाता है। योगशास्त्रों में वर्णित अष्टांग योग और क्रिया योग साधक के लिए अत्यंत सहायक होते हैं।

॥ इति शम् ॥

सहायक ग्रन्थसूची

1. महर्षि पतञ्जलि, "योगसूत्र" पण्डित शास्त्री दुण्डिराज, (सम्पादक), तृतीयसंस्करण, चौखम्बा संस्कृत भवन, २००१
2. महर्षि पतञ्जलि, "पातञ्जलयोगदर्शन", स्वामी श्रीब्रह्मलीनमुनिः, (सम्पादकः), तृतीयसंस्करण, चौखम्बा प्रकाशन, २०१०
3. महर्षि पतञ्जलि, "पातञ्जलयोगदर्शनम्", डॉ. कर्णाटक विमला, (सम्पादिका), प्रथमसंस्करण, रत्ना पब्लिकेशन्स, २०१०
4. महर्षि वाल्मीकि, "रामायणम्", देवनाथन् आर् - पाण्डेय प्रकाश, (सम्पादक) द्वितीयसंस्करण, परिमल पब्लिकेशन्स, २००६
5. आचार्य शङ्कर, "उपनिषद्भाष्यम्", एस् शास्त्री सुब्रह्मण्य, (सम्पादक), द्वितीयसंस्करण, श्रीदक्षिणामूर्ति मठ प्रकाशन, वाराणसी, २००४
6. "श्रीमद्भगवद्गीता" (शांकरभाष्य हिन्दी अनुवादसहित), गीताप्रेस, वि.सं. २०७०
7. मिश्र वाचस्पति, "साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी ('कृष्णा' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या)", पण्डित गौड श्रीज्वालाप्रसाद, (व्याख्याकार), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१९
8. डा. श्रीवास्तव नीलम, "पातञ्जलयोगसूत्र की संस्कृत-व्याख्याओं का एक आलोचनात्मक अध्ययन", नगीन प्रकाशन मेरठ, १९९८
9. आर्य सतीश, "पातञ्जल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)", वेद योग चैरिटेबल ट्रस्ट, (प्रकाशक), नई दिल्ली, २०१६
10. महर्षि पतञ्जलि, "पातञ्जलयोगदर्शन (तत्त्ववैशारदी-योगवार्तिकेति टीकाद्वयोपेतं व्यासभाष्यम्)", डॉ. कर्णाटक विमला, (सम्पादिका), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय: एवं रत्ना पब्लिकेशन्स, वाराणसी, १९९२
11. डॉ. आर्य कर्मसिंह, वैदिक उपासना, अमर प्रकाशन, मथुरा, उत्तरप्रदेश:
12. डॉ. शुक्ल रविशङ्कर, "योगतत्त्वविमर्शिनी ("चान्द्रधरी" हिन्दीव्याख्या सहित)", मान्यताप्रकाशन, नवदेहली, २०१९

²² श्रीमद् भगवद्गीता – १८-६६

²³ तैत्तिरीय उपनिषद् – २-१-१

References (Translated into English)

1. Maharshi Patanjali. *Yoga Sutra*. Edited by Pandit Shastri Dhundiraj. 3rd Edition. Chaukhamba Sanskrit Bhavan, 2001.
2. Maharshi Patanjali. *Patanjala Yogadarshana*. Edited by Swami Shribrahmalina Muni. 3rd Edition. Chaukhamba Prakashan, 2010.
3. Maharshi Patanjali. *Patanjala Yogadarshanam*. Edited by Dr. Vimala Karnataka. 1st Edition. Ratna Publications, 2010.
4. Maharshi Valmiki. *Ramayanam*. Edited by R. Devanathan and Pandey Prakash. 2nd Edition. Parimal Publications, 2006.
5. Acharya Shankara. *Upanishad Bhashyam*. Edited by S. Shastri Subrahmanya. 2nd Edition. Sri Dakshinamurti Math Publications, Varanasi, 2004.
6. Shrimad Bhagavad Gita (*with Shankaracharya's Commentary and Hindi Translation*). Gita Press, Vikram Samvat 2070.
7. Vachaspati Mishra. *Sankhya Tattva Kaumudi ("Krishna" Sanskrit-Hindi Commentary)*. Commentary by Pandit Gaud Shri Jwalaprasad. Chaukhamba Surbharati Prakashan, Varanasi, 2019.
8. Dr. Neelam Srivastava. *A Critical Study of the Sanskrit Commentaries on Patanjali Yoga Sutra*. Nagin Prakashan, Meerut, 1998.
9. Satish Arya. *Patanjala Yogadarshana (with Vyasa Bhashya and Bhoja Vritti)*. Published by Veda Yoga Charitable Trust, New Delhi, 2016.
10. Maharshi Patanjali. *Patanjala Yogadarshana (Vyasa Bhashya with the Two Commentaries: Tattva Vaisharadi and Yoga Varttika)*. Edited by Dr. Vimala Karnataka. Banaras Hindu University & Ratna Publications, Varanasi, 1992.
11. Dr. Karma Singh Arya. *Vedic Upasana*. Amar Prakashan, Mathura, Uttar Pradesh.
12. Dr. Ravi Shankar Shukla. *Yogatattva Vimarsini (with the "Chandradhari" Hindi Commentary)*. Manyata Prakashan, New Delhi, 2019.